International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 12-12-2020; Accepted: 27-12-2020; Published: 16-01-2021
www.hindijournal.com
Volume 7; Issue 1; 2021; Page No. 16-22

तुलसीदास निरूपित मानव-धर्म की आचार-संहिता

डॉ. आशा पाण्डेय
असोसिएट प्रोफेसर, आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
विश्व प्रसिद्ध महाकवि गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्याकाश का चमकता हुआ पूर्णमासी का वह चंद्र हैं, जो सहृदय को शीतलता और अमृत से परिपूरित करता है। हिंदी साहित्य-जगत् में "सूर सूर तुलसी ससि" - उक्ति प्रचलित है, इससे सहमत हुआ जा सकता है। तुलसीदास रचित साहित्य परिमाण, भाव-विषय वैविध्य, काव्यरूपों और भाषा-शैली में अद्वितीय है। तुलसीदास भक्तिकाल में प्रचलित भक्ति के विभिन्न स्वरूपों, मतों, वादों, दर्शनों, पद्धतियों, अभिव्यक्ति-शैलियों के विवादों से ऊपर उठ उनमें समन्वय के पक्षपाती रहे हैं। उनका साहित्य अर्थ-गांभीर्य, भाव-सरसता, प्रभावशीलता, काव्य-सौष्ठव एवं अभिव्यंजना कौशल में अपना सानी नहीं रखता है। तुलसी का साहित्य 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं', शास्त्रों और ग्रंथों का निचोड़ होकर भी लोकसंग्रह और मौलिकता से संपन्न है। 'स्वान्तः सुखाय' लिखा गया उनका साहित्य 'सर्वजन हिताय', लोकमंगलकारी सिद्ध हुआ और वह व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ता गया। उनकी भक्ति में लोकरंजक रूप भी विद्यमान है तथा वह लोक धर्म और लोक मर्यादा के प्रति भी सचेत है। तुलसीदास धर्म, संस्कृति और साहित्य की अभिनव, अनुपम त्रिवेणी हैं। उन्होंने सदियों से चली आ रही 'रामकथा' को 'भाषानिबद्ध' कर जन-जन तक पहुँचाया। उनके आराध्य राम परब्रह्म भी हैं और अवतारी मानव भी है। वे मानवीय करुणा से परिपूरित 'गरीबनिवाज' हैं, 'शरणागत वत्सल हैं, दुष्टहंता हैं, धर्मसंरक्षक हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम और अत्यंत विनम्र भी हैं। उसमें शक्ति-शील-सौंदर्य का अद्भुत सम्मिश्रण है। तुलसीकृत महाकाव्य 'रामचरितमानस' विश्वप्रसिद्ध ग्रंथों में सम्मिलित है। 'मानस' में मानवरूप धारी राम वनवास के दौरान अपने लिए उचित निवास स्थान की जिज्ञासा वाल्मीकि ऋषि के समक्ष प्रकट करते हैं। ऋषि ने जो स्थान बताएँ, वे आज भी मानवों के लिए प्रासंगिक हैं, यह लेख तुलसीदास लिखित मानवधर्म की आचार- संहिता के संदर्भ में हैं।

मूलशब्दः मानवधर्म, लोकमंगल, सर्वजन हिताय, उत्कृष्ट, नीति-निपुण, अर्पण, दास्यभाव

प्रस्तावना

परमात्म-सत्ता में पूर्ण विश्वास भारतीय आस्था एवं निष्ठा का प्राण रहा है, जिसके अभाव में शिवतत्व का भी अभाव हो जाता है और जीवन में प्रादुर्भूत अशिवतत्व संत्रास, दुःख, पीड़ा, क्लेश, निराशा आदि का कारण बन जाते हैं। उसी अशिव में भटकता हुआ 'स्व' स्वयं में 'पर' बन जाता है और दिशा भ्रमित होकर जड़भाव का विकारी मात्र रह जाता है।

इस विभीषिका पूर्ण परिस्थिति में मानव को अवलंब यदि प्राप्त भी हुआ तो जड़ता, अज्ञान और विवेकहीनता के कारण सही दिशा के संकेत पहचान नहीं पाता है और लक्ष्यविहीन होकर इधर-उधर की ठोकरों के आघात सहता रहता है। इस

भटकाव की स्थिति से उबरने का मार्ग दर्शन महापुरुष कराते रहे हैं और सही दिशा की ओर मोड़ने की प्रेरणा देते रहे हैं

सत्य सत्य है। वह किसी के भी नकारने से असत्य नहीं हो सकता है। उसकी सत्ता में अभाव की स्थिति नहीं आ सकती है। सूर्य बादलों में छिप भले ही जाए किंतु उसकी अभाव या शून्य संभव नहीं है। सत्य-मार्ग का अवलंबन ही श्रेय और प्रेय की सिद्धि करा सकता है। प्रेय भी वही श्रेष्ठ है जिसके मूल में श्रेय हो। महापुरुषों का जीवन इसी सत्य से ओतप्रोत होता है और दूसरों के लिए भी वे यही चाहते हैं। जीवन के इसी सत्य पर विश्व की प्रतिष्ठा है।

गोस्वामी तुलसीदास ने महाकाव्य 'रामचरितमानस' में स्थान-स्थान पर इसी सत्य का संकेत देकर भटके हुए मानव को सही दिशा प्रदान की है। उन्होंने अवसर उपलब्ध होते ही मानव की आचार-संहिता का विभिन्न रूपों में विभिन्न स्थानों पर प्रतिपादन भी किया है। तुलसी के आदर्श राम है और राम से किसी भी प्रकार संपर्क सूत्र में जुड़ा हुआ मानव आदर्श मानव है और मानवता के उच्च धरातल पर स्थित है। यह कहना यहाँ सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'रामचरितमानस' मानवता की उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित महाकाव्य है। वह मानवता जो सदा अकलुष, अनिंद्य तथा संपूर्ण समाज की हित-विधायिका है, लोकमंगलकारी है।

राम महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पर पहुँचते हैं और महर्षि की वंदनाकर, उन्हें तीनों लोकों के ज्ञाता मानकर अपनी संपूर्ण कथा - वनवास आदि की सुनाते हैं और अपने निवास के लिए स्थान पूछते हैं :

"तुम त्रिकाल दर्शी मुनि नाथा।"[1]
"अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।।
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला।।"[2]

प्रश्न बहुत ही सहज है किंतु इसी बहाने त्रिकालदर्शी महर्षि और महर्षि के बहाने तुलसी को कुछ कहने का अवसर मिला है। यह भी तथ्य है कि वाणी आंतरिक भावना, चरित्र और स्वाभाविक झुकाव से ही परिपूर्ण होती है। अस्तु महर्षि इस प्रश्न को अपनी भावना से समन्वित करते हुए एक सच्चे मानव की आचार-संहिता प्रस्तुत कर देते हैं। महर्षि के इन शब्दों के माध्यम से स्वयं तुलसीदास का हृदय झांक रहा है। महर्षि ने राम के तात्त्विक रूप को समझा है :

"चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत विराग जान अधिकारी।।"[3]

फिर भी प्रश्न का उत्तर देना मर्यादा है। उसका निर्वाह करने के पूर्व अपने भाव को पुनः स्पष्ट कर देते हैं:

"पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि दिखावौं ठाउँ।।"[4]

सर्वांतर्यामी घट-घट वसने वाले आप से रहित स्थान कौन-सा है? मुझे तो यह पूछने में भी संकोच हो रहा है। यदि आप स्वयं बता दें कि आप कहाँ नहीं हैं? तो मैं आपको स्थान बता सकता हूं। इस गूढ़ प्रश्न में ही उत्तर छिपा है, इससे अधिक कुछ भी कहने की आवश्यकता रह ही नहीं जाती है, किंतु तुलसीदास एक पूर्ण मानव की परिभाषा संसार के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं, क्योंकि उनके विचार में वही पूर्ण है जो सर्वत्र है :

"सिय राम मय सब जग जानी।"[5]

'संपूर्ण जग में ईश्वर व्याप्त है'- वे इस भावना से परिपूर्ण है तथा जिसके समस्त कर्म केवल प्रभु के लिए ही होते हैं। जिसके समस्त अंग, समस्त भावनाएं एवं समस्त ऐश्वर्य केवल प्रभु के लिए हैं -वही पूर्ण मानव हैं। समस्त विकारों से रहित पूर्ण मानव ही वह सर्वोत्तम स्थान है, जहां राम निवास कर सकते हैं। उनका विस्तार से वर्णन करते हुए तुलसीदास ने वाल्मीकि द्वारा आदर्श मानव की व्याख्या प्रस्तुत की है - जो मनुष्य अपने समस्त उपकरणों को भगवद् निमित्त अर्पित कर देता है, वही राम का निवास स्थान बन जाता है। यहाँ 14 स्थानों के निरूपण में एक आदर्श मानव की कल्पना विद्यमान है। संक्षेप में उन स्थानों, गुणों का निरूपण यहाँ किया जा रहा है:

1. श्रवण: सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।
   जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
   भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।[6]

पहला निवास स्थान बताते हुए वाल्मीकि कहते हैं जिन मनुष्य के समुद्र के समान कान निरंतर नाना प्रकार से आपकी सुंदर चर्चाएँ सुनते ही रहते हैं, कभी अघाते नहीं हैं। बल्कि सुनने की भावना निरंतर बढ़ती ही जाती है। उनके हृदय में आप रह सकते हैं।

2. दर्शन: लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।
   निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ।।
   तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।[7]

जो बड़ी-बड़ी नदियों, सागरों, सरोवरों सदृश्य अन्यों का मोह छोडकर चातक की भांति निरंतर अपने नेत्रों से जलद सदृश-राम के परम सुंदर स्वरूप का ही दर्शन करते रहते हैं और उसकी एक बूँद पाकर ही सुखी हो जाते हैं। अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानंदमय स्वरूप की ज़रा सी झलक के सम्मुख स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत् के - पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौंदर्य का निरादर करते हैं। उनके सुखदायक हृदय में आप रह सकते हैं।

3. आस्वादन: जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
   मुक्ताहल गुन गन चुनइ राम बसहुँ हिय तासु।।[8]

आपके यश रूपी मानसरोवर से जिनकी जीभ नीर-क्षीर विवेकी हंसिनी के समान केवल मोती रूपी आपके गुणों को ही चुगती है, केवल उन्हीं की ही चर्चा करती रहती है। आप उसके हृदय में बस सकते हैं।

4. इंद्रियाँ:प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।
   तुम्हहिं निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।
   सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित कर बिना बिसेषी।।
   कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा।।
   चरन राम तीरथ चलु जाहीं। राम बसहुँ तिन्ह के मन माहीं।।[9]

जिनकी नासिका आपके प्रसाद की सुगंधि से भरी रहती है। जो आपको अर्पण करके भोजन ग्रहण करते हैं और वस्त्र-आभूषण आदि भगवद् अर्पण करके ही धारण करते हैं। जिनके मस्तक देवता, गुरू और ब्राह्मण आदि को देखकर विनम्रता सझुक जाते हैं। जिनके हाथ
नित्य निरंतर आपके चरणारविंदों की पूजा में ही लगे रहते हैं। और जिनके पैर तीर्थों की यात्रा में ही अपने को सफल मानते है।

5. जप-पूजा : मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।
   तरपन होम करहिं नित नाना। विप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।
   तुम्ह ते अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।
   सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
   तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ।।[10]

जो 'आपका' मंत्र का जप करते रहते हैं और परिवार सहित आपके पूजन में ही व्यस्त रहते हैं। (पूजन की तैयारी, सामग्री चयन, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदि संपूर्ण अंग एवं भाव सेवा में लगाए रखना ही पूजा है।)
जो शारीरिक कर्म के रूप में तर्पण, होम, ब्राह्मण-अतिथि सेवा आदि में लगे रहते हैं और उसे भगवद् अर्पण कर देते हैं। (उक्त समस्त कर्म जो अपने लिए नहीं करता है। कर्म के आरंभ में, कर्म काल में तथा अंत में - प्रत्येक समय - एक भाव रखता है वह जो कुछ भी कर रहा है, वह केवल प्रभु की इच्छा से ही कर रहा है। इस प्रकार उसके किए हुए कर्म उसके नहीं रह जाते हैं वे श्रीराम के बन जाते हैं और वह निर्लेप रह जाता है।) जो गुरू को हृदय में आप से भी अधिक जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते है। जिनकी केवल एक ही अभिलाषा है कि आपके चरणों में उनकी प्रीति निरंतर बनी रहे। उनके मन-मंदिर में आप बस सकते हैं।

6. वृत्तियाँ : काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
   जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।[11]

काम, क्रोध, मद, मान, लोभ, छोभ, राग, द्रोह, कपट, दंभ, छल आदि आसुरी वृत्तियाँ हैं। ये समस्त वृत्तियाँ मानव को दानव बना देती हैं, जो मानवता के लिए कलंक है। जिनकी वृत्तियाँ इनसे सर्वथा रहित हैं आप उनके हृदय में निवास कीजिए।

7. समत्व भाव : सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।
   कहहिं सत्य प्रिय वचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।
   तुम्हहिं छाड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।[12]

जिन की दृष्टि में समत्व योग का उत्कृष्ट निदर्शन है। जो सबसे मधुर बोलते हैं। सुख और दुःख में तथा निंदा और स्तुति में समान भाव से वर्तते हैं। जो सदैव सत्य ही बोलते रहते हैं। सोते-जागते आपकी शरण में रहते हैं। आप के सिवाय किसी और का अवलंब नहीं लेते।

8. विवेक: जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव विष तें विष भारी।।
   जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।

जिन्हहिं राम तुम प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।।[13]

जो व्यक्ति उत्तम विवेक से संपन्न है। परनारी में जन्म देने वाली मां की दृष्टि रखते हैं। दूसरे के धन को विष के समान त्याज्य समझते हैं। दूसरे की संपत्ति जिनकी प्रसन्नता का कारण होती है तथा दूसरे की विपत्ति जिन्हें दुखी बना देती है। जिन्हें आप प्राणों से भी प्रिय हैं। उनके हृदय आपके रहने के लिए शुभ सदन हैं।

9. भगवदर्पण : स्वामि सखा पितु मात गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहुँ सीय सहित दोउ भ्रात।।[14]

जो एकमात्र आपको ही अपना स्वामी, मित्र, पिता, माता, गुरु आदि मानता है। उनके मन रूपी मंदिर में निवास कीजिए।

10. स्वभाव: अवगुन तजि सबके गुन गहहिं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ।।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।।[15]

जो सभी के गुणों को स्वीकार करते हैं और अवगुणों पर ध्यान नहीं देते हैं। दूसरों के लिए कष्ट सहने को सदा तैयार रहते हैं तथा नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है।

11. आश्रय: गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहिं सब भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहुँ सहित बैदेही।।[16]

जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे एकमात्र आपका का ही आश्रय हैं, आपका ही भरोसा है। आपके भक्त जिसे प्रिय हैं, उनके हृदय में आप बसिए।

12. समर्पण: जाति पाँति धनु धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई।।[17]

जो जाति-पाँति, धन, धर्म, कुल, बड़ाई, प्रियजन, परिवार-जन, घर-बार छोड़कर मात्र आपको ही अपने हृदय में बसा लेते हैं। जो यह मानते हैं कि सांसरिक सभी संबंध तो केवल माने हुए हैं, उनमें सत्य नहीं है। सच्चा संबंध तो जीव का एकमात्र परब्रहम से ही है।

13. दास्यभाव: सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा।।[18]

जो स्वर्ग, नरक, अपवर्ग में रूचि नहीं रखते हैं। सर्वत्र धनुष-बाण धारी आपका ही दर्शन करते हैं और अपने कर्मों से (क्रिया रूप में), मन से (भावना से) और वाणी (वर्णन रुप से) आपका दासत्व स्वीकार किए हुए हैं। राम आप उनके हृदय में डेरा डाल सकते हैं।

14. निष्काम: जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु।।[19]

जो कभी भी किसी से भी कुछ भी नहीं चाहते हैं। केवल आपसे सहज प्रेम रखते हैं। प्रेम के बदले

कुछ भी नहीं चाहते हैं। उनके हृदय में निरंतर वास कर सकते हैं। वह आपका अपना ही घर है।

इस प्रकार महर्षि बाल्मीकि एक पूर्ण भगवदाश्रय पात्र - दिव्य गुण संपन्न मानव - का दिग्दर्शन कराकर अपनी भावाभिव्यक्ति कर देते हैं और बाद में निवास की सुविधा की दृष्टि से श्री राम को चित्रकूट का परिचय भी दे देते हैं। उक्त परिचय प्रश्न का स्थूल पक्ष है जबकि 14 निवास स्थानों का वर्णन करने में तुलसीदास इस सूक्ष्म रहस्य की ओर संकेत करते हैं जो एक मानव को पूर्ण-काम बना देता है एवं आत्मा को राम में निमग्न करा देता है। यह आचार-संहिता मानव मात्र के लिए आचरणीय है, जो ऐहिक एवं परमार्थिक परमानंद की अनुभूति में निमग्न कर देना चाहती है, जिसमें डूबा हुआ जीव सद्-विशिष्ट, चैतन्य-विशिष्ट एवं आनंद-विशिष्ट बनकर जीव की संज्ञा से ऊपर उठकर अपने सहज स्वभाव में स्थित हो जाता है और जो विषयासक्त हैं, उनके लिए यह नरकतुल्य संसार परम-आनंद का निधान बन जाता है।

अत्यंत सहज-सरल रूप में 'भाखा' में मानव जीवन की आचार-संहिता का निरूपण तुलसीदास के ही बूते की बात थी। इसकी पुष्टि आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी करते हैं - "गोस्वामीजी के प्रादुर्भाव को हिंदी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिंदी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में ही पहले पहल दिखाई पड़ता है।"[20]

तुलसी ऐसे ही हैं, अपने आराध्य राम के गुणगान का कोई अवसर चूकने नहीं देते हैं। राम द्वारा महर्षि वाल्मीकि से निवास स्थान पूछने भर की देर थी कि मानवीय आचार-संहिता रच डाली, साथ ही अपनी अटूट भक्ति का परिचय भी दे डाला। ऐसे भक्ति काल के शीर्षस्थ सगुण भक्ति काव्य-धारा के रामभक्त महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि "गोस्वामीजी की भक्तिपद्यति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामांजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतना ही जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।"[21]

संदर्भ सूची:

1. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 125, चौपाई 4
2. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 126 चौपाई 3
3. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा संख्या 127 चौपाई 3
4. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा संख्या 127
5. श्रीरामचरितमानस : बालकांड, दोहा 8, चौपाई 1
6. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 128 चौपाई 2,3
7. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 128 चौपाई 3,4
8. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 128
9. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 129 चौपाई 1,2,3
10. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 129 चौपाई 3,4
11. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 130 चौपाई 1
12. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 130 चौपाई 2, 3
13. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 130 चौपाई 3, 4
14. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 130
15. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 131 चौपाई 1

16. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 131 चौपाई 2
17. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 131 चौपाई 3
18. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 131 चौपाई 4
19. श्रीरामचरितमानस : अयोध्याकांड, दोहा 131
20. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 92
21. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 97